chapter-6

षष्ठ अध्याय

कला एवं भाव का विशिष्ट संयोग

कला

कला संचेतना की कृत्रिम बुनावट पर 'इन्द्र' जी का विश्वास नहीं है। उनके गीतों में कलावादी संचेतना की सन्निहिति सायाश न होकर सहज ही दिखाई देती है। उनके द्वारा प्रस्तुत बिम्ब और प्रतीक अभिनव और मौलिक होते हुए भी जीवन की यथार्थ अनुभूति के इर्द-गिर्द उठते-बैठते नजर आते हैं।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' का कथ्य बहुआयामी है, भाव संपदा भी अत्यन्त विस्तृत है, जहाँ तक उनके काव्य में कला चेतना की सन्निहिति का प्रश्न है, वहाँ उनका सम्पूर्ण काव्य कलात्मक पटुता तथा अभिजात सौन्दर्य से अभिमण्डित है। उनके काव्य के कलापक्ष को एक निश्चित 'फ्रेम' में रखकर नहीं परखा जा सकता। इसका मुख्य कारण है कि कवि भावात्मक संवेदनाओं का प्रातिभ सर्जक है। उसके काव्य में कला के उत्कर्ष स्वाभाविक रूप से ही समाविष्ट हुए हैं। उसमें किसी सायास अभियोजना का पूर्वाग्रह नहीं है। कलात्मक अभिव्यंजना कवि की सहज प्रवृत्ति है, जो सर्वत्र देखी जा सकती है।

रस, अलंकार, उक्ति-वैचित्य, औचित्य, व्यंजना की परम्परित कसौटी पर उनके विस्तृत गीत-संसार को परखना बेमानी होगा। उन्होंने कला को कभी भी प्रदर्शन का साधन नहीं बनाया। उनके गीतों में समासोक्ति, अन्योक्ति, प्रतीक, अतिरेक, व्यतिरेक, दीपक, अपन्हुति, श्लेष, यमक आदि अलंकार उनकी भाषा की सहज सुन्दरता और प्रवाहमान रागात्मकता में परिगुम्फित रहे हैं।

यहाँ कला संचेतना के उपकरणों को उनके गीतों से पृथक् कर के नहीं परखा जा सकता बल्कि उनके गीतों की सम्पूर्ण सौन्दर्यवादी संचेतना को समन्वित रूप से परखा या सराहा जा सकता है।

यहाँ हम उनके विशिष्ट गीतों में बिम्ब तथा प्रतीक की अभिनव संयोजना एवं समृद्धि पर दृष्टिपात करेंगे।

बिम्ब और प्रतीक विधान

''उद्भव के आधार पर बिम्ब दो प्रकार के माने जाते हैं- स्मृति जन्य और स्वरचित। स्मृति जन्य बिम्ब पूर्वगामी अनुभूति का पुनरुत्पाद मात्र होता है। जैसे अपने किसी मित्र की याद आने पर उसके रूप, गुण, स्वभाव, स्वर आदि की दृष्टि और शब्द बिम्ब हमारे मन-मस्तिष्क में आ जाते हैं। स्वरचित बिम्ब या प्रतिमाएँ अपेक्षाकृत नूतन और मौलिक होती हैं। यद्यपि उनके संरचक-घटक हमारे अनुभव में अलग-अलग आ चुके होते हैं। जैसे – 'मेघदूत' स्वयं कवि 'कालिदास' की स्वरचित नूतन प्रतिभा है। वह

हमारे प्रत्यक्ष अनुभव में न कभी आया है, न आ सकेगा। हाँ हमने 'मेघ' और 'दूत' को अलग-अलग अवश्य देखा है। यह नूतन प्रतिमा बिम्ब-निर्माण या बिम्ब-विधान समस्त कला, काव्य संगीत और नव-निर्माण का मूल आधार है। भाषा और चिन्तन के मूल उपादान बिम्ब ही है। व्यक्तियों की बिम्ब-विधान सम्बन्धी क्षमता में बड़ा अन्तर होता है। दृष्टि-संबंधी बिम्ब-विधान या कल्पना की क्षमता प्रायः सभी व्यक्तियों में मिलती है।''[1]

ज्ञानेन्द्रियों के आधार पर बिम्ब या प्रतिमाएँ कई प्रकार की होती हैं। जैसे-दृष्टि, शब्द, गन्ध, रस, स्पर्श आदि। दृष्टि संबंधी बिम्ब-विधान के बाद शाब्दिक बिम्ब-विधान की क्षमता का स्थान आता है। गन्ध, रस, स्पर्श सम्बन्धी कल्पना की क्षमता अपेक्षाकृत कम लोगों में विद्यमान होती है।

साहित्य-रचना में बिम्ब-विधान का स्वरूप बहुत कुछ कवि या लेखक के अपने व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। रचना की शैली से ही व्यक्ति के विषय में अनुमान नहीं किया जा सकता, उसके बिम्ब-विधान से भी उसके व्यक्तित्व का अनुमान लगाया जा सकता है। वाल्मीकि, कालिदास और अश्वघोष के बिम्ब-विधान उत्कृष्ट होते हुए भी विशिष्ट प्रकार के हैं। कबीर, सूर और तुलसीदास की रचनाओं में यही बात मिलती है। प्रसाद पंत, निराला और महादेवी वर्मा के बिम्ब-विधान उनके व्यक्तित्व के अनुसार अपने-अपने ढंग के हैं।

छायावादी काव्य और छायावादोत्तर काव्य की तरह नवगीत ने भी बिम्ब-विधान को सहजता से अपनाया है, किन्तु जीवन की विविधता का चित्रांकन करने वाले नवगीतकारों ने अपने बिम्बों का चयन जीवन के वैविध्य से किया है। एक ओर यदि गृहस्थ जीवन के विभिन्न पक्षों का हृदयस्पर्शी उद्‌घाटन है, तो दूसरी ओर प्राचीन संस्कृति से आधुनिक बोध को अभिव्यंजित करने का सहज प्रयास भी देखा जा सकता है-

''काँस कुछ करील
कुछ बबूल हो गए।
हम सब
इतिहासों की भूल हो गये।
कल के मिजराब
आज के बघनखे हुए,
मुरझाये फूल

P/Th
11459
SMT. HANSA MEHTA LIBRARY

ताख पर रखे हुए,

रंग–गंध से

नाते दूर के हुए

धुंधलाये बिम्ब

नखत धूल हो गये।

मौसम के माथे

यह क्या व्यथा बदी

शीशे में काप रही

बीसवीं सदी,

बालू में डूब गई

भीतरी नदी,

उड़ते ध्वज

धंसते मस्तूल हो गये।''[2]

बिम्बों के आगमन से गीतकार का 'निजी अस्तित्व' स्पष्ट न होकर 'संकेत' बन जाता है। इसीलिए गीत में बिम्बों का स्थान नगण्य है। फिर भी अनायास ही नवगीत में बिम्बों के आ जाने से अद्भुत सौन्दर्य दिखाई पड़ने लगता है। काव्य–शिल्प की मौलिकता का आधार सामान्य रूप से भाषा प्रयोग में माना गया है। भाषा की सार्थकता उपयुक्त बिम्ब विधान की सृष्टि में निहित है। 'बिम्ब' कल्पना की सृष्टि है, लेकिन काव्य के संदर्भ में अयथार्थ का पर्याय नहीं है। कल्पना की मूल अवधारणा 'संवेदन' की प्रक्रिया के माध्यम से समझी जा सकती है।

प्रत्यक्ष अनुभव वास्तविक जगत के प्रति इन्द्रियों की सीधी प्रतिक्रिया है और परोक्ष अनुभव उसकी मानसिक प्रतीति। इसी मानसिक प्रतीति को कल्पना कहा जा सकता है। किन्तु यह 'काल्पनिकता', 'वास्तविकता' का विलोमार्थी हरगिज नहीं है। बल्कि 'कल्पना' वास्तविक की अनुपस्थिति में भी उसे उपस्थित करके देखने की प्रक्रिया है। अतएव 'कल्पना' यथार्थ के समान न होकर भी उससे अवश्य संलग्न रहती है। 'कला' के सम्बन्ध में ध्यातव्य है कि जब 'वास्तव','कल्पना' के द्वारा पुनः सृजित की जाती है। तब उसमें अन्य अनुभवों के मिश्रण अथवा सम्बन्ध अनुभवों में किसी के त्याग का अवकाश रहता है, क्योंकि कला सृष्टि का अभिप्रेत सौन्दर्य–सृष्टि है। चयन की इस सुविधा के फलस्वरूप कलाकार कल्पना के द्वारा नवीनतम मौलिक एवं रम्यतम रूपों की

सृष्टि में समर्थ होता है। लेकिन इस सृष्टि का रूपात्मक होना अनिवार्य है। क्योंकि इसमें इन्द्रिय ग्राह्यता का गुण अपेक्षित है। कल्पना के इस इन्द्रिय-सम्बध व्यापार की अनिवार्य परिणति बिम्ब-रचना में होती है। बिम्ब और कल्पना के इस उत्पाद्य-उत्पादक सम्बन्ध को शिप्ले, लावेल, वेले, काष्ट, लिविस तथा मैक्सिम गोर्की आदि दार्शनिकों और समीक्षकों ने स्वीकार किया है। इस तथ्य का प्रतिपादन करते हुए डॉ. नगेन्द्र लिखते हैं - सर्जना के क्षणों में अनुभूति के नाना रूप कवि की कल्पना पर आरुढ़ हों, जब शब्द अर्थ के माध्यम से व्यक्त होने का उपक्रम करते हैं तो इस सक्रियता के फलस्वरूप अनेक मानस-छवियाँ 'आकार' ग्रहण करने लगती हैं। इन्हें ही काव्य-बिम्ब कहते हैं। नवगीत के काव्य-शिल्प का निर्माण इसी प्रातिभ कल्पना के द्वारा हुआ है जिसमें शब्दार्थ अपनी अभिव्यक्ति में काव्य के बिम्बात्मक रूप ग्रहण करते हैं।

डॉ. शम्भुनाथ सिंह 'बिम्ब' को नवगीत के शिल्प की सर्वप्रथम विशिष्टता मानते हैं- ''नवगीत पूर्णतः बिम्ब-धर्मी काव्य है....। किन्तु उसके बिम्ब पूर्ववर्ती कविता के समान अलंकृत, अनुकृत, रुढ़ अथवा काल्पनिक नहीं है। उसमें या तो ऐसे प्रातिभ बिम्बों का प्रयोग हुआ है जो पश्यन्तीवाक के स्वर से अभिव्यक्त होने के कारण सर्वथा नवीन, अछूते और अकल्पनीय हैं, या उसमें अधिकतर यथार्थ जगत के अनुद्घटित आयामों के अप्रयुक्त बिम्ब प्रयुक्त हुए हैं। जैसे-वैज्ञानिक बिम्ब और औद्योगिक क्षेत्र के जीवन बिम्ब, ठेठ ग्रामीण अंचलों एवं वन-पर्वतों के आदिम तथा मिथकीय बिम्ब, भोगी हुई जीवनानुभूतियों के संश्लिष्ट बिम्ब उस चेतना के अंधकार में निहित वासनाओं के छद्म-रूपों के खण्डित एवं प्रतीकात्मक बिम्ब तथा राजनीतिक, सामाजिक विसंगतियों और विडम्बनाओं के सांकेतिक एवं छन्दात्मक, बिम्ब, इन बिम्बों की पहचान है।

'नवगीत' न केवल समृद्ध बिम्बों का काव्य है, बल्कि नवगीतकार के बिम्बों की मौलिक विशेषता है जो उसके काव्य-शिल्प की मौलिकता का आधार है। इसी कारण नवगीत-विधा की सर्जना में वह यांत्रिक समानता नहीं है, जो उसकी अन्य सामयिक काव्य-धाराओं में है। शम्भुनाथ सिंह के गीतों में बिम्ब-विधान की दो परिपाटियाँ हैं, उनके प्रारम्भिक आंचलिक गीतों में बिम्बों का निर्माण प्राकृतिक उपादानों एवं लोक-अभिप्रायों से हुआ है। जब कि उनके आधुनिक युग बोध को व्यंजित करने वाले गीतों में यथार्थ परिवेश को बिम्ब-निर्माण के लिए प्रयुक्त किया गया है। इनमें आधुनिक जीवन के वैज्ञानिक संदर्भों का प्रर्याप्त प्रयोग है। श्रव्य एवं दृश्य, दोनों संवेदनों को मिश्रित रूप में प्रस्तुत करने वाला एक बिम्ब है-

"सरसराती उड़ानें इधर से उधर
थरथराती हुई हर गली हर डगर
छोड़कर घर सभी हो गए लापता
सामने पड़ा एख सूना नगर।"[3]

गीतकार रामदरश मिश्र के बिम्बों की रचना का प्राथमिक आधार प्रकृति है, प्राकृतिक उपादानों द्वारा उन्होंने ठोस संश्लिष्ट एवं कलात्मक बिम्बों की रचना की है। उसमें वर्ण-वैशिष्ट्य और स्पष्ट-वैशिष्ट्य विशेष रूप से दर्शनीय है। साथ ही उन्होंने अपने बिम्बों को एक गतिशील प्राणवत्ता देने के लिए मानवीकरण का प्रयोग किया है-

"बहने लगी नदी ज्यों
अपने ही भीतर खोयी थी
जाग उठी फिर प्यास कि जैसे
मरी नहीं थी, सोयी थी
बनने लगा अनन्त स्वरों में
किस वसन्त पतझार पर।

लिपियों से भर गया पृष्ठ-सा
यह लम्बा सन्नाटा
पल-पल चुभने लगा हवा को
ज्यों गुलाब का काँटा
सुबह-सुबह चुपचाप रख गया
कौन फूल था द्वार पर।"[4]

रवीन्द्र भ्रमर का बिम्ब-विधान प्रकृति के समृद्ध सौन्दर्य को इन्द्रिय संवेद्य बनाकर प्रस्तुत करने में बहुत सफल रहा है। उनके प्रथम संकलन में जहाँ विविधता और व्यापकता अधिक है, वहाँ 'सोन मछरी मन बसी' में एक विशिष्ट संदर्भ की नयी भाव-भंगिमाओं में प्रस्तुत किया गया है। इस संग्रह के गीतों में प्रतीकात्मकता अधिक है। साथ ही इनमें श्रृंगारात्मक संदर्भ भी अधिक हैं। यथा-

"नीली-सी चिड़िया
उसके नन्हें-नन्हें पंख
कहाँ-कहाँ बाधूँ अपना पैगाम
मेरी सुबह कूकती पिहकती है।"[5]

बिम्बों की इस दृष्टि से वीरेन्द्र मिश्र का काव्य भी प्रयाप्त समृद्ध है। साथ ही उसमें एक क्रमिक विकास भी देखने को मिलता है। सातवें दशक में उनके द्वारा लिखे गीतों में प्रयुक्त बिम्ब जहाँ अधिक समृद्ध हैं वहीं आठवें दशक में उनके गीतों में व्यंग्य की धार देने के लिए प्रयुक्त वस्तुपरकता के तत्व ज्यादा है। 'अविराम चल मधुवंती' में अनेक प्रकृति बिम्बों की जो सृष्टि उन्होंने की है, वे उनके गीतों की अलग पहचान है। सावन के पदयात्री का यह बिम्ब इसी प्रवृति का परिचायक है–

''अभी–अभी आया है सावन का पद यात्री
अभी–अभी चला जायेगा
और धनुष–द्वारे की, नील–क्षितिज देहरी पर फूल
चढ़ा जायेगा
ज्वार उठेगा फिर भी
और कहेगा फिर भी
जाना क्या बरखा को ओ माँझी भाई रे।''[6]

नवगीत को जितने मौलिक बिम्ब देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने दिये हैं, उतने शायद थोड़े ही कवियों ने दिये होंगे। इनके बिम्बों में एक सघन बुनावट है। 'इन्द्र' जी ने सामयिक संदर्भ को विशिष्ट बिम्बों में बाँधकर एक काल–निरपेक्ष व्यापकता दी है। सांस्कृतिक चेतना की सम्पन्नता को व्यंजित करने वाले अनेक बिम्ब इनके गीतों में उपलब्ध है। प्रकृति का प्रयोग इनके बिम्ब–विधान में एक विशिष्ट शैली में हुआ है–

''कल्पतरु
समझे जिन्हें हम
वे खजूरी हो गये
व्यर्थ गूंगी प्रतीक्षा ने
एक फल की
आस की
पत्तियाँ सूखी बिछीं थीं
राह में मधुमास की
बाँस, काँस, बबूल
वन में
जी–हुजूरी हो गये।''[7]

'इन्द्र' जी के नवगीतों की संचेतना में एक अलग मौलिक स्वर आभाषित होता है जो उनके प्रातिभ दृष्टि का निदर्शन करता है।

सुप्रसिद्ध समीक्षक विश्वनाथ नवगीतकारों को सजग करते हुए कहते हैं–"नवगीत को केवल बिम्ब-धर्मी काव्य कहना पाश्चात्य बिम्ब-वादियों की उसी बात को दुहराना है कि हमेशा बिम्बों में ही अच्छी कविता होती है। यह अन्तर्विरोधी बात है एक ओर तो भारतीयता की पहचान की दुहाई दी आती है, दूसरी ओर नवगीत को केवल बिम्बों तक समेट कर भारतीय काव्य-मूल्यों से नाता तोड़ लिया जाता है। रागात्मकता और व्यंजकता का नवीनता से गहरा संबंध है। नयी कविता के बिम्बों में कसावट के कारण संकेत अधिक हैं। नयी कविता के बिम्ब संश्लिष्ट और विश्लिष्ट दोनों हैं। नवगीत के बिम्ब विश्लिष्ट अधिक हैं। नवगीत में वैज्ञानिक और यथार्थपरक बिम्ब कम, लेकिन गाँवों, पर्वतों, जंगलों और नदियों के बिम्ब अधिक हैं। नवगीत के केन्द्र में जीवन का कोई राग या बोध होता है। अपने कथ्य को प्रभावशाली बनाने के लिए नवगीतकार बिम्बों का सहारा लेता है। नवगीतकार के लिए 'बिम्ब' साधन मात्र है।" वस्तुतः नवगीत के बिम्ब-विधान का व्यापक अध्ययन अपेक्षित है।

प्रतीक

प्रतीक शब्द का प्रयोग उस दृश्य के गोचर (अथवा प्रस्तुत) वस्तु के लिए किया जाता है; जो किसी अदृश्य या अगोचर (अथवा अप्रस्तुत) विषय का प्रति-विधान उसके साथ अपने साहचर्य के कारण करता है। अथवा कहा जा सकता है कि किसी अन्य स्वर की समानुरूप वस्तु द्वारा किसी अन्य स्तर के विषय का प्रतीक प्रति-विधान मूर्त, दृश्य, श्रव्य प्रस्तुत विषय द्वारा करता है। जैसे अदृश्य या अप्रस्तुत ईश्वर देवता अथवा किसी व्यक्ति का प्रतिनिधित्व उसकी प्रतिमा या अन्य कोई वस्तु कर सकती है। साधारण तौर से कहा जा सकता है कि प्रतीकों द्वारा किसी विषय का प्रतिविधान करना प्रतीकवाद है। मनुष्य के सामाजिक और धार्मिक व्यवहार का अधिकांश प्रतीकात्मक होता है। मनोविश्लेषण अवचेतन, जीवन और स्वप्नों की व्याख्या करने में प्रतीकों का सहारा लेता है। साहित्य और कला के क्षेत्र में प्रतीकवाद एक विशिष्ट भाव-धारा का आन्दोलन और अभिव्यक्ति है। प्रतीकीकरण मनुष्य का सहज स्वभाव है। मनुष्य का समस्त जीवन प्रतीकों से परिपूर्ण है। वस्तुतः मनुष्य मूलतः प्रतीकों के माध्यम से ही सोचता है। अमूर्त चिन्तन अधिक विकसित स्तर का लक्षण है।

नवगीत का चरित्र मुख्यतः ग्राम्यांचली परिवेश का है, जिसमें मुख्यतः गाँव तथा आदिवासियों जैसे जन-साधारण के जीवन को भारतीय अथवा देशी प्रतीकों के माध्यम से चिन्हित और अभिव्यक्त करने की लालसा अधिक दिखाई देती है। देवेन्द्र कुमार, नईम, ओम प्रभाकर, गुलाब सिंह, माहेश्वर तिवारी, अनुप अशेष, दिनेश सिंह, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र', यश मालवीय, सोमठाकुर, शांति सुमन आदि ने एक ओर जहाँ लोक जीवन के यथार्थ को सूक्ष्म प्रतीकों के माध्यम से सूक्ष्मतम और सघनतम अभिव्यक्ति दी है, वहीं दूसरी ओर इन्होंने गाँव और शहर का विभेद किये बिना जीवन समाज और समय के सभी पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयत्न भी किया है। इन गीतकारों में रुढ़ियों, विडम्बनाओं, संत्रासों, यातनाओं आदि के प्रति गम्भीर विक्षोभ दिखाई पड़ता है। इनके अतिरिक्त शिव बहादुर सिंह 'भदौरिया' बुद्धिनाथ मिश्र, योगेन्द्र दत्त शर्मा, विनोद निगम, ओम प्रभाकर, कुमार रवीन्द्र, रवीन्द्र भ्रमर, उमाशंकर तिवारी, कुँअर बेचैन, राजेन्द्र गौतम, कैलाश गौतम, किशन सरोज, सुरेश गौतम, अखिलेश कुमार सिंह, रामचन्द्र चन्द्रभूषण, नीलम श्रीवास्तव, जगदीश श्रीवास्तव, विष्णु विराट, सत्यनारायण, अरविन्द सोरल, महेन्द्र नेह, वीरेन्द्र आस्तिक, रमेश रंजक, विद्यानन्दन राजीव, उदयभानु हंस, अमरनाथ श्रीवास्तव आदि गीतकारों ने समकालीन यथार्थ की व्यापक पड़ताल की है और प्रतीकों का स्वाभाविक प्रयोग कर कथ्य को स्पष्ट करने के भरसक प्रयत्न भी किये हैं।

भाषा

सधारणतः 'काव्य-भाषा' एक अमूर्त धारणा है। स्थूल रूप में भाषा का तात्पर्य शब्द प्रयोग से है। किन्तु शब्द निरपेक्ष रूप में भाषा की कोई पहचान बनाने में असमर्थ होते हैं। जब कि उनकी प्रयुक्त-शैली भाषा के वास्तविक चरित्र को उद्घाटित करने में समर्थ होती है। हिन्दी-गीत में छायावाद ने भाषा का एक मानक स्थापित किया था और युग संदर्भों में अप्रासंगिक हो जाने तथा कुछ अन्य त्रुटियों के उभरने के कारण छायावादोत्तर काव्य में भाषा का एक दूसरा मानक स्थापित किया गया। बच्चन, नरेन्द्र, अंचल, दिनकर आदि ने हिन्दी गीत भाषा में जो परिवर्तन किया वहाँ उनसे एक चूक भी हुई। उन्होंने छायावादी मुहावरे को बदलते हुए भाषा के लिए जो इन्द्रिय-संवेद्य रूपात्मक, बिम्बात्मक 'डिक्शन' अपेक्षित है, ये रचनाकार अधिक अर्जित नहीं कर पाये और उनकी परम्परा में आने वाले गीतकारों में यह तत्व ओझल भी हो गया। शब्द प्रयोग के माध्यम से उत्पन्न होने वाली ऊर्जा सम्पन्नता लुप्त होती चली गयी। इस दिशा में

'नवगीत' ने काव्य-भाषा में यह परिवर्तन किया। जिसकी अपेक्षा अधिकांश रचनाकारों एवं पाठकों को थी। उसने काव्य-भाषा को कुहासे से निकाल कर एक स्पष्ट बिम्बात्मक भूमिका प्रदान की। नवगीत की सबसे बड़ी भाषिक विशिष्टता यह है कि उसने एक ओर भाषा के सौन्दर्य-परक गुणों में अभिवृद्धि की है और दूसरी ओर उसने अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता का पूर्णतया निर्वाह भी किया है, नवगीतकार ने शब्द के समुचित प्रयोग पर बल दिया है। नवगीत ने मर्यादाओं को तोड़ते हुए शब्दों के शील की रक्षा के साथ उनका नूतन संस्कार भी किया है, जिसके आधार पर नवगीतकार ने एक स्वस्थ मर्यादित संबंध काव्य-भाषा के साथ बनाया है। जहाँ तक शब्द चयन का मामला है, उसने जीवन के हर क्षेत्र में शब्दों को ग्रहण किया है। विषयानुकूल शब्द चयन की प्रवृत्ति में परिवर्तन आया है। यदि हम 'मेंहदी और महावर' और 'सुबह रक्त पलाश की' अथवा 'सोन मछरी मन बसी' और 'सुलझा है छायानट धूप में' की भाषा का शब्द चयन के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करें, तो पाते हैं कि नवगीतकार ने केवल पारम्परिक गीत की भाषा को ही नहीं बदला है, अपितु उसने स्वयं अपने मुहावरे एवं साँचे को अपर्याप्त पाकर बारम्बार तोड़ा है और नवीन साँचों का निर्माण किया है। काव्य-भाषा की यह मौलिकता जीवन्तता नवगीत के शिल्प की ताजगी का आधार है। इसके अतिरिक्त शब्द चयन के पीछे कवियों की अपनी मानसिकता भी सक्रिय रही है। वीरेन्द्र मिश्र, देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' घनश्याम अस्थाना, राजेन्द्र गौतम और योगेन्द्र दत्त शर्मा जहाँ संस्कृत निष्ठ भाषा का अधिक प्रयोग करते हैं, वहाँ शम्भुनाथ सिंह 'नईम', ठाकुर प्रसाद सिंह, अनूप अशेष के गीतों में आंचलिकता की महक विद्यमान है। माहेश्वर तिवारी और रमेश 'रंजक' में भाषा की सहजता का आग्रह अधिक है। उमाकान्त मालवीय ने आधुनिक संदर्भों में जुड़ी भाषा का व्यंग्यात्मक प्रयोग ज्यादा किया है। वीरेन्द्र मिश्र के काव्य में संगीत की परिभाषिक शब्दावली का प्रयोग जहाँ कवि की संगीत के प्रति आसक्ति का परिचायक है, वहीं मछुआरे के जीवन से संदर्भित शब्दों का प्रयोग कवि के विशेष प्राकृतिक सौन्दर्य से संयुक्त होने का प्रमाण है।

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के गीत धूम्रवलयांकित, पंकलीना, अरण्यानी, ब्रज स्वरलिपियाँ, घूर्णित रथचक्र शिलापंखी छन्द, तटवर्ती मत्स्यगंधाएँ, अभिमंत्रित स्वयंवरा कल्पतरु, क्षितिज-पट, वत्स धूमवलित जैसे शब्दों के प्रयोग से अपने संस्कृतनिष्ठ व्यक्तित्व का परिचय देते हैं-

''तुम अभावों

वेदनाओं के धनी
सर्वस्वत्यागी
लोक पीड़ा के पुजारी
ओ महारागी !
भीड़ कवियों की जुड़ी पर
क्यों तुम्ही भाते निराला
लक्ष्य का सन्धान कैसा
दृष्टि पथ पर
था अंधेरा
लगाते रहते निरन्तर
धूमवलित
चक्र फेरा
रोशनी में थाम अँगुली
तुम न यदि लाते निराला।''[8]

भाषा के प्रति ऐसी ही संस्कृत-निष्ठता घनश्याम अस्थाना की रचनाओं में भी देखने को मिलती है। उनके गीतों में रूप-सर्जन में प्रांजल भाषा का जो प्रयोग हुआ है, उनमें निसर्ग परिवेश की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति की अद्‌भुत क्षमता है। इस शैली में छायावादी काव्य के शिल्पका अग्रिम विकास रूपायित हुआ है।

नवगीत की भाषा भी नई कविता की भाषा की तरह ध्वनि-प्रधान है। इसमें लोक के शब्द, लोक-बिम्ब और लोक-प्रतीक अधिक हैं। नवगीत में मिथक अपेक्षाकृत कम है। यहाँ क्रियापदों से अधिक विशेषण है। इसलिए ऐंद्रिय संवेदनों को व्यक्त करने में इसकी भाषा बहुत सफल है। सहज भाषा की कसी हुई बुनावट में दूसरी पीढ़ी के गीतकार अधिक सफल हैं। प्रतीक और मुहावरे भाषा को संकेत से भर देते हैं। संज्ञा पदों के प्रयोग का विश्लेषण किया जाय तो नयी कविता से कम नयी वस्तुओं का परिचय नवगीत ने नहीं कराया है। नवगीत का वस्तु-बोध नयी कविता से कम नहीं है। जिन रचनाकारों की भाषा व्यंजक नहीं थी, वे अधिक नहीं चल पाये।

नवगीत की भाषा सामान्यतः एक रचनात्मक उर्जा से दीप्त है। डॉ. शम्भुनाथ सिंह ने नवगीत के भाषागत वैशिष्ट्य को स्पष्ट करते हुआ लिखा है- ''नवगीत की भाषिक ए/ संरचना अपनी सहजता, सुबोधता, अकृत्रिमता और लोकोन्मुखता के कारण नयी कविता

की अभिजात संस्कारों वाली भाषा तथा पारम्परिक गीतों की गलदश्रु भावुकता वाली काव्य भाषा से नितान्त भिन्न और विशिष्ट है। यह लोकाश्रित भाषा है, जिसमें आंचलिक बोलियों के शब्दों एवं मुहावरों का निः संकोच प्रयोग हुआ है; किन्तु लोक-भाषा से जुड़ी होकर भी अर्थवत्ता की अनन्त सम्भावनाओं से युक्त है।''

नवगीत की भाषा में विद्यमान देशज उक्तियाँ नवगीत के कथन को स्वाभाविक और अनौपचारिक बनाती है। लोक-भाषा का पुट पाठक या श्रोता से आत्मीय संवाद स्थापित कर उससे बतियाता हुआ अपना गहरा प्रभाव उसपर छोड़ता है। नवगीत के देशज रंग ने उसे खड़ी बोली के ठेठपन से बचाकर कोमलता के सहज लोच के गुणों से अभिसिक्त किया है। इसका आशय यह हरगिज नहीं कि 'नवगीत' की भाषिक संरचना आंचलिक शब्दावलियों या फिर विभिन्न बोलियों से हुई है। बल्कि वहाँ परिनिष्ठित खड़ी बोली में आंचलिक शब्द-विन्यास अथवा बोली का प्रयोग है।

यह प्रयोग सचेष्ट और श्रमसाध्य भी नहीं है। ऐसा होने पर नवगीत में कृत्रिम अभिव्यक्ति का खोट आ जाता और उसमें प्रयुक्त आंचलिक शब्दावली मात्र भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन का आधार बनाती है। वस्तुतः नवगीत में बोलियों की साझेदारी कुछ इस सहजता से हुई है कि सम्पूर्ण शब्द विन्यास कथ्य की स्वाभावोक्ति पा जाता है। निः संदेह सहज स्वाभाविक तथा दैनिक जीवन में प्रयुक्त शब्दावली और कहने का ढंग जितना देशीय संस्कारों से युक्त होता है, उतना ही वह सजीव, प्रभावक व मर्मस्पर्शी होगा।

आज का गीतकार वर्तमान परिस्थितियों से सीधे वार्तालाप की स्थिति में है। यह वार्तालाप अधिक पैने और साफ-सुथरे बिम्बों में ही रहा है। प्रतीकात्मक अन्वति के स्थान पर बिम्बों में यह स्पष्ट एवम् स्थूल चित्रमयता अधिक दिखाई देती है। भाषा की नयी अभिव्यंजनात्मक मुद्राएँ उभरी हैं। भाषिक गठन में जो एक असहज तनाव पीछे के गीतों में दिखाई दिया था। वह अब नहीं रह गया है। इधर के गीतों में भाषिक प्रयोग अधिक सहज एवं मुहावरेदार हुआ है। लोक-जीवन से लिये गये मुहावरें और कहावते कथ्य को सजीव और सहज सम्प्रेषणीय बनाते हैं। इससे नवगीत को प्रतीक, बिम्ब और अन्य उपकरणों की ताजगी मिलती है। नवगीतकारों ने इन उपकरणों को इस तरह संजोया कि वे रचना के अर्द्धवृत्त को सार्थक विस्तार दे सके। इस संदर्भ में राहुल सांकृत्यायन ने ठीक ही कहा है- ''वस्तुतः भाषा निर्जीव यांत्रिक तौर से या सीधे तर्जुमा वाले शब्दों के द्वारा हमारे भावों को प्रकट करने में समर्थ नहीं होती। भावों को ये वाक्य ज्यादा व्यक्त कर

सकते हैं, जो अपने शब्दार्थों से दूर तक ध्वनित करते हो, यह सामर्थ्य भाषा में तभी आती है जब उसमें निर्जीव शब्दावली की जगह सजीव मुहावरे वाले वाक्य लाये जायें।''

'इन्द्र' जी की प्रायोगिक प्रतिभा देखिए :

''नदी, झरना, सरोवर
मैं नहीं हूँ
किसी से मांगकर
लाया न पानी
हवाएँ
नीर मेरा पी रही हैं
बने ये मेघ मुझसे
नित्य दानी
समुन्दर को न यह चिन्ता सताती
कहीं कोई न उसका जल चुराले।''[9]

यहाँ 'इन्द्र' जी ने प्रकृति के अनेक प्रतीकों से अर्थ लेकर अपने स्वाभिमानी अखण्डित व्यक्तित्व की बात कही है। इस प्रकार के बिम्ब सीधे अर्थ पर ही आरोपित होते हैं। समानधर्मी क्रियाओं की यहाँ अपेक्षा नहीं रहता। इसी प्रकार–

''धुन्ध डूबे
राह पर के मोड़ होंगे
या अकेलापन
बस जरा–सी
गाँठ में होगी उदासी
पगों में भटकन
और कुछ हम
साथ अपने ले न जायेंगे।''[10]

ये बिम्ब आत्मैक्य स्थापित करने वाले कथाकार के अन्तर्रुढ़ भावों को व्यक्त करते हैं। बिम्बों का यह वैशिष्ट्य भी है कि कवि अपने आस–पास के आरोपित बदलाव को जैसे सह नहीं पा रहा। वह बदलते मूल्यों को स्वीकृति भी दे रहा है। कवि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ने अपने गीतों के वैशिष्ट्य को स्थापित करने के लिए बिम्बों या प्रतीकों को

आरोपित नहीं किया, किन्तु उनके विशिष्ट कथ्यों की प्रांजल प्रस्तुतियों के संतुलन स्थापित करते हुए ये बिम्ब बड़े ही सहज रूप से उनके कथ्यों में समाविष्ट हुए हैं। जैसे–

''कुहरे में खोयी है खुशबू की
पंखुड़ियाँ
बिखरी हैं
रेती पर रंगों की फुलझड़िया
सपनों में चुना जिन्हें
वे गुलाब झूठे थे।''[11]

इन बिम्बों में अभीष्ट कथ्यों को रेखांकित करने के लिए कवि प्रकृति के उपादानों की परम्परित रूप धर्मिता को या गुण धर्मिता को भी नकार देता है। समग्र परिवेश में कवि मन की छटपटाहट तथा अर्थों के विघटन की चिन्ता का स्वर मुखर होता नजर आता है।

कवि अन्तर्मुखी संचेतना से संलग्न होकर समष्टिगत संवेदना के विचलन का अनुभव करता है। जैसे–

''मैं न आपबीती करने में
भूला जगबीती
मरु की प्यास बुझाने में
गागर मेरी रीति।''[12]

इसी प्रकार–

''तथागत के शिष्य पहरा दे रहे हैं
जीर्ण भिक्खु विहार पर
रिस रहा आकाश यह घायल
पंछियों की
नुकीली लोहित उड़ानों से
लौटकर आती हवा पागल
पीपलों से लिपट कर
भुतहा सिवानों से
हीनयानी, वज्रयानी सब खड़े हैं
संघ करुणा द्वार पर।''

मिथकीय बिम्बों में सामानान्तर विषय को विस्तार के साथ अर्थव्यंजित करने की बड़ी सामर्थ्य है। 'इन्द्र' जी के गीतों में ऐसे बहुत सारे गीतबिम्बों को एकत्र किये हैं। यह विलक्षण बात है।

''छन्द-विधान में एक मुग्धकारिणी शक्ति तथा तदनुरूप प्रभावोत्पादकता है। नवगीत तो संस्कारों से छन्दोबद्ध रचना है। दरअसल उसने जिस लोकजीवन को लय से घेर बैठे हैं। सुख-दुःख, मिलन-विरह, जन्म-मरण, ऋतु-उत्सव आदि में से कोई विषय शेष नहीं रह गया है। दैवन्दिन जीवन की आवश्यकताओं से लेकर हृदय की रहस्यात्मक अनुभूतियों तक सब पर लोक कवियों की दृष्टि पड़ी है और उन्होंने सबको गीतों में प्राण-प्रतिष्ठा दी है।'' स्पष्ट है कि नवगीत ने लोकगीतों की लय को अपनी आवश्यकतानुसार छन्द का आधार बना लिया है।

छन्द की सर्वाधिक विशिष्ट भूमिका को अधिक लाक्षणिक छन्दात्मक बनाने में हैं गेयता सांगीतिकता या चमत्कार पैदा करने के लिए नहीं। इसलिए जातीय छन्दों, लोकधुनों आदि को अपनाते हुए नवगीत अपनी काव्य-जमीन पर बरकरार रहते हुए, जो छन्दात्मक सृष्टि कर सका है। समकालीन काव्य-जगत में उसका महत्वपूर्ण प्रदेय है।

'नवगीत' छन्द पर आधारित रचना सृष्टि है। शिल्प के स्तर पर नयी कविता से स्पष्ट वैभिन्यता का आधार भी इसकी छान्दिकता है। नयी कविता छन्द मुक्त आयोजन है, जब कि नवगीत छन्दाश्रित रचना-विधान है। नवगीत में प्रयुक्त छन्द का कोई निश्चित स्वरूप नहीं है। प्रायः प्रत्येक रचनाकार के स्वयं सृजित छन्द तो हैं ही एक ही रचनाकार ने अनेक तरह के छन्दों का भी सृजन किया है। इस प्रकार नवगीत में प्रयुक्त छन्दों में आश्चर्य-जनक वैविध्य दिखाई देता है। इन छंदों में छन्द का परम्परागत आधार और शास्त्रीय स्वरूप ढूँढना व्यर्थ है। क्योंकि यहाँ शास्त्रीय स्वरूप मिलने की बात तो दूर रही, छन्द-शास्त्र का ज्ञान रखने वाले नवगीतकार भी कम ही होंगे।

दर असल नवगीत की छान्दिक संरचना की पृष्ठभूमि में पारम्परिक गीत की लम्बी परम्परा व लोकगीत की समृद्ध उर्जामयी चिर-नवीन लोक-परम्परा विद्यमान थी। नवगीत के छन्द ने पारम्परिक गीत से खड़ी बोली के शब्दों की तराशी हुई अभिव्यंजना तो ली, जो लय में सहायक हो सकती थी, किन्तु उसके ढाँचे को सर्वथा अस्वीकार कर दिया। वह छन्द के लिए लोक-गीत के शिल्प-समृद्धि का अवश्य आभारी है जिसके एक-एक छन्दात्मक ढाँचे को अपने नये-नये रूपों में ढाला है।

नवगीत की प्रकृति ही ऐसी है कि उसकी रचना किसी विशष्ट छन्द अथवा लय में होती ही नहीं, ऐसी परिस्थिति में प्रत्येक नवगीतकार के पास अपने छन्द विधान का समृद्ध कोश है। नवगीतकारों की दृष्टि में ''नवगीतों में छन्द का ठोस अनुशासन टूट गया है। यह आवश्यक नहीं है कि गीत छन्द-बद्ध, तुकसम्मत रूपकार में ही संभव हो सकता है। गीत शैली के इस प्रचलित स्वरूप और तज्जनित परिभाषा को मैं गीत की यांत्रिक रीढ़ मानती हूँ।'' वस्तुतः छन्दों के प्रयोगों से उत्पन्न हुई अनावश्यक शब्दों की भीड़ से तभी मुक्ति संभव है, जब 'कठोर छन्दों' के अनुशासन की अवमानना हो। इस कठोर-छन्द के तुकनिर्वाह बंधन ने कविता को नीरस, जड़ और यांत्रिक बना दिया था। यद्यपि लोग ''साहित्यिक गीत को आज भी पिया, जिया, हिया आदि तुकों की पुनरावृत्ति मानते हैं। उनके विषय में केवल यही कहा जा सकता है कि गीत नहीं, वे ही समय से पिछड़ गये हैं।'' मुक्त छन्द से जहाँ गीत की 'नीरसता' समाप्त हो गई, वहीं इस (मुक्त-छन्द) के प्रणयन से छन्दों की विविधता ने भी स्थान बना लिया। 'चरणों' की भी कोई निश्चित और निर्धारित संख्या नहीं है। चाहे वो आठ पंक्तियों में समाप्त हो या बीस पंक्तियों में। इन्हीं गीतों को सरसता प्रदान करने के लिए कुछेक नवगीत कवियों ने लोक-धुनों और छन्दों का प्रयोग किया है। निराला ने जो बात सिद्धान्त रूप में कही थी, उसी का अनुकरण करते हुए उसे व्यावहारिक रूप देकर जो नयी दृष्टि छन्दों के क्षेत्र में नवगीतकार ने दी है, निश्चित ही वह श्लाघ्य है।

डॉ. जगदीश गुप्त के अनुसार-''मुक्त छन्द के कवि द्वारा की गयी 'हृदय छन्द' की कल्पना भी असाधारण है। यह कोई छन्दात्मक प्रयोग न होकर उनकी गहन रागात्मकता का प्रतीक है, जो किसी न किसी रूप में निराला के सारे काव्य में अन्तर्निहित है।''[13]

विशिष्ट भाव-बोध की कविता के बावजूद, गहन रागात्मकता कवित्व को सूक्ष्म धारदार व सम्प्रेषणीय गुण-धर्म देती है। 'कनुप्रिया' के कवि भारती की चरम तन्यमयता का क्षण फिर वह 'ठंडा लोहा' और 'सात गीत वर्ष' के गीतों में राग की सधनता के कारण पाठकीय संवेदना का सहज अंग बन जाता है। ऐतिहासिक परिपार्श्व में मानवीय प्रकृति को खँगालती और व्यक्ति तथा सत्ता के रिश्ते को विश्लेषित करती श्री कांत वर्मा की 'मगध' में संग्रहीत रचनाएँ गहन रागात्मकता के कारण कथ्य में वस्तु-सतह को छूती मर्मस्पर्शी बन पड़ी है, किन्तु शैल्पिक आग्रह और कहीं-कहीं बौद्धिक दबाव के कारण वे नवगीत होने से रह जाते हैं।

इन तमाम उदाहरणों द्वारा हम यही सिद्ध करना चाहते हैं कि प्रवृत्तिगत सौन्दर्य की अभिचेतना उनके अधिकांश गीतों में सहज रूप से व्याप्त है। डॉ. भारतेन्दु मिश्र ने उचित ही कहा है– ''यथार्थ लेखन के चक्कर में रचकारों ने कोरे शब्दों को ही चूसा या निचोड़ा है। जब कि 'इन्द्र' जी ने इस दिशा में सांस्कृतिक गीत देकर मेरी दृष्टि में पहल की है। कवि ने केवल इतिहास ही नहीं दुहराया है बल्कि समकालीन–सामाजिक स्थितियों को ऐतिहासिक बिम्बों से, पौराणिक आख्यानों से, अरण्यक–शिल्पों से, लोक–संस्कृति से जोड़कर नवगीत का नया समीकरण सिद्ध किया है।''14

उनका समग्र गीत काव्य तथा साहित्य व्यंजनाभिव्यक्ति के कलात्मक उत्कर्ष पर खड़ा है जहाँ भाषा और अभिव्यक्ति के उच्चस्थ सोपान तय किये गए हैं सुश्री शरद सिंह ने ठीक ही कहा है – 'इन्द्र' जी के गीत अपनी शब्द–योजना प्रतीकों और बिम्बों से रचना शिल्प को सशक्त बना देते हैं। रचनाएँ नियति चक्र के यथार्थ से, जिन्दगी की कड़वी सच्चाई से बहुत कुछ राहत दिलाने में सक्षम हो जाती है। व्यष्टि के साथ ही समष्टि के लिए मंगलमयी बन जाती हैं। वे आंचलिकता और प्रादेशिकता की भूमि की सौंधी महक लिये हुए होकर भी क्षेत्रीयता के बन्धन से मुक्त है।''15

जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि 'इन्द्र' जी का काव्य प्रदर्शनवृत्ति की निम्नाकांक्षा से रहित है। उनका ध्येय गीत के सहज सौन्दर्य को सुरक्षित रखते हुए अपने अभीष्ट कथ्य को उजागर करने के लिए दृढ़ अलंकरण संयोजना या चमत्कृति का समावेश सृजन करना उनका अमीष्ट नहीं रहा यही कारण है उनके गीत पाठक के अन्दर से अन्दर तक संस्पर्शित करते हैं और संवेदनात्मक सम्मोहन की स्थिति तक ला खड़े करते हैं।

औचित्य सम्पूर्ति के निर्वहन में 'इन्द्र' जी विशेष दक्ष हैं। कथ्य की संगति, रागात्मक लयबद्धता भाषा का उत्कर्ष तथा अर्थ के औचित्य का निबन्धन उनमें सर्वत्र देखा जा सकता है जैसे–

''हम कभी जुगनू हुए, बिजली हुए, बादल हुए
तुम कभी झूमर हुए, नूपुर हुए, पायल हुए
दूर से
तुमने हमें
आवाज दी
ज्यों लचकती
शाख

फूलों से लदी

तुम कभी नरगिस हुए, चम्पक हुए पाटल हुए

हम कभी चुप्पी हुए, बंसी हुए, मादल हुए।''[16]

कला संचेतना का उत्कृष्ट उदाहरण उनकी चतुष्पदीय गीत रचनाओं में देखा जा सकता है। जहाँ भाषा की प्रांजलता के साथ कथ्य की अभिनीयता ध्यातव्य रही है-

''दृष्टि के सीमान्त तक फैली कफन-सी नीलिमा

साँझ दिन की लाश पर कब से रही है सुगबुगा।

सीं दिये किसने पलाशों के कनकवर्णी अधर

रह गया दिवसान्त का संगीत वन में अधउगा।''[17]

देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' के काव्य में बिम्बों का समायोजना सहज होते हुए भी विरल और अनुपम है जो गीत के सम्मोहन की वृद्धि करता है। इसमें विविध प्रकार के बिम्बों का समायोजना इस प्रकार हुआ है-

अमूर्त भाव बिम्ब

''धुंध में हर एक संज्ञा सर्वनामा बन गयी

हर विशेषण जल उठा ठण्डी क्रिया की आँच में।

व्याकरण की आँजुरी से सूक्ष्म भाषा छन गयी

बज्र किसने जड़ दिया नीले पिघलते काँच में।''[18]

रूप बिम्ब

''हँसते-हँसते नयनों में जल भर लेना

रोते-रोते फिर सहसा ही हँस देना।''[19]

वायवी बिम्ब

''नदी उड़ी आकाश तक, लगा हवा के पंख

कल के रिश्ते हो गये, बालू पर के शंख।''[20]

मानवीकृत बिम्ब

''अँधियारे से उठ रही तारो की पदचाप

महुए का ईधन जला, रही पहाड़ी ताप।''[21]

गति बिम्ब

"पत्ती काँपी डाल पर, झूमें वन में झाड़
पर्वत बदले करवटें, आँधी रही दहाड़।"[22]

अनुभूत बिम्ब

"नदी सूख काँटा हुई, जले व्यास के फूल
आँखों में चुभती रही, कस्तूरी बन धूल।"[23]

दृश्य बिम्ब

"हवा पेड़ के कान में, कह बैठी कुछ बात
जिसको सुनकर आशिया, काँपा सारी रात।"[24]

आभास बिम्ब

"रेत–रेत रिश्ते हुए, धुआँ–धुआँ पहचान
लगी पिघलने आँच में, शीशे की चट्टान।"[25]

बिम्ब संयोजना में 'इन्द्र' जी ने प्रकृत्ति के उपकरणों को जीवन्त ही नहीं किया वरन् उनकी अर्थवत्ता तथा प्राकृतिक धर्माचरित वृत्ति को भी औचित्यार्थ के अनुरूप संयोजित किया है।

अंत में कह सकते हैं कि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' कला संचेतना के संदर्भ में या भाव संपदा के संयोजना के विषय में परम्परित अंधानुकरण के हामी नहीं रहे। उन्होंने अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त किया है। अभिनव प्रस्तुति, प्रांजल भाषा, उदात्त मानसिक संचेतना, भावों के विविध रंगी रागात्मक कथ्य या सोद्देश्य कथ्यों के औचित्यपूर्ण प्रतिपादन उनके कला–पक्ष की बहुआयामी छवि को उजागर करते हैं। अंत में मैं यह भी कहना चाहूँगी कि देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' एक विशिष्ट तथा महान गीतकार हैं जिनका अभीष्ट–सोच बाह्य सौन्दर्य की सज्जा को संयोजित करना नहीं रहा, बल्कि आन्तरिक रागात्मक अनुगूँज की सज्जा के साथ मानवीय संवेदनाओं के माधुर्य का रसाग्रही अवलोकन करना ही रहा है। परम्परा और रूढ़ियों से बहुत कुछ हटकर उनका कला–सम्पादन उत्कृष्ट तथा सम्मोहन पैदा करने वाला है।

संदर्भ सूची

1. हिन्दी – साहित्य कोश (भाग–1) पृ. 431
2. योगेन्द्र दत्त शर्मा – नवगीत अर्द्धशती पृ. 188
3. डॉ. शम्भुनाथ सिंह : नवगीत दशक–1 पृ. 134
4. भव्य–भारती नवगीत शिखर (1999) पृ. 17
5. सोन मछरी मन बसी – 'रवीन्द्र भ्रमर'
6. अविराम चल मधुवंती पृ. 33 वीरेन्द्र मिश्र
7. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' नये–पुराने सितम्बर–1998 ई. पृ. 129
8. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' नये–पुराने गीत अंक–3 सितम्बर–1998 पृ. 132
9. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ''गन्धमादन के अहेरी'' पृ. 25
10. वही वही पृ. 29
11. वही हम शहर में लापता है पृ. 20
12. वही वही पृ. 31
13. भव्य–भारती 'नवगीत' पृ. 13
14. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' ''व्यक्ति और अभिव्यक्ति'' पृ. 71
15. शरद सिंह वही पृ. 72
16. देवेन्द्र शर्मा 'इन्द्र' 'आँखों में रेत प्यास' पृ. 17
17. वही 'व्यक्ति और अभिव्यक्ति' पृ. 99
18. वही वही पृ. वही
19. वही वही पृ. 98
20. दोहे वही पृ. 103
21. वही वही पृ. 103
22. वही वही पृ. वही
23. वही वही पृ. 105
24. वही वही पृ. 104
25. वही वही पृ. 104